# समाज सेवा - एक वैज्ञानिक समीक्षा

**1. समाज की वर्तमान स्थिति :-**

आज सर्वत्र चोरी, लूट-पाट, राहजनी, डकैती, हत्या, अपहरण, ब्लैकमेलिंग, स्मगलिंग, टैक्स-चोरी, छीना-झपटी एवम् कानून का खुला उलंघन, [redacted] का बोलबाला है । सभी सोचते हैं, कि किसी न किसी प्रकार से रातों-रात धनवान बन जाया जाय, ताकि जिन्दगी के सारे सुख वह अकेला खरीद सके और फिर उन्हें मन मर्जी से भोगे । पैसे की इस अंधी दौड़ के कारण प्रतिस्पर्धा और सब ओर मानसिक तनाव छाया हुआ है । किसी के मन को भी शान्ति नहीं है, चाहे वह गरीब हो, चाहे धनवान अथवा मध्यम वर्ग का । इस आपाधापी के कारण पूरा समाज रुग्ण है और भयभीत भी। लोग घरों को लोहे के पिंजरों में बदलते जा रहे हैं और पुलिस तथा चौकीदारों का काफिला दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, परन्तु फिर भी लुटेरे, बदमाश अपना काम कर ही जाते हैं । ऐसा लगने लगा है, कि यदि पूरी फौज ही सुरक्षा के लिए लगा दी जाय, तो भी कुछ होने वाला नहीं है, कारण कि आदमी की फितरत ही ऐसी है वह कुछ भी सुरक्षा के उपाय करेगा, इंसान उसे भेदन करने का मार्ग ढूँढ ही लेगा । अमेरिका जैसे देश में ओसवाल्ड द्वारा जौन केनेडी की हत्या का उदाहरण हमारे सामने है । इस कानून व्यवस्था की गड़बड़ी के लिए सरकार से अधिक हमारा समाज अर्थात् हम सब जिम्मेवार हैं । निम्न पंक्तियों में इस समस्या पर विस्तार से समीक्षा की जा रही है । कृपया ध्यान दें । ऐसा नहीं है, कि ये समस्याएं पूर्वकाल में नहीं थीं । ये तब भी थीं और उनका समाधान पुलिस नहीं, बल्कि मनुष्य की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर उसमें बदलाव लाकर किया गया था । समस्या के वे परीक्षित हल, आज भी परम उपयोगी हैं, जिन्हें हमारे शास्त्रों ने धर्म के अन्तर्गत परिभाषित किया है ।

**2. समस्या का समाधान** :- समस्या के समाधान हेतु भारतीय मनीषियों ने प्रकृति के नियमों एवम् मानव के बहु आयामी रूपों का गहरायी से अध्ययन किया । वैदिक धर्म इन्हीं खोजों का परिणाम है । उन्होंने अपने अध्ययन में पाया, कि सृष्टि चक्र के सफल संचालन में दो ही तत्व कार्य कर रहे हैं - (अ) अनुशासन (ब) यज्ञ कर्म ।

**(अ) अनुशासन** :- आकाशगंगाएं, अनन्त सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वियाँ एवम् अनन्त आकाशीय पिण्ड अनवरत रूप से गतिशील रहकर गति के नियमों का तथा समय का कठोरतापूर्वक एवम् पूरी निष्ठा से अनुपालन करते हैं और "आदान-प्रदान" चक्र द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि को ऊर्जा प्रदान करते हैं ।

प्राचीन वैज्ञानिकों ने यह भी पाया, कि मानव की अपराधिक प्रवृत्ति उसकी अन्तहीन भोग लिप्सा का परिणाम है । इस पर अंकुश लगाए बिना मानव पाप कर्म में फँसा रहेगा और परिणाम में अन्तहीन दु:ख भोगेगा । अतएव करूणावश उन्होंने मानव को आवागमन के चक्र से छुड़ाने हेतु भोगवादी संस्कृति के स्थान पर मोक्षवादी संस्कृति को वरीयता दी । अतएव प्रकृति के नियमों के आधार पर श्रेष्ठ समाज के निर्माण हेतु कड़े अनुशासनात्मक प्रावधान करने पड़े । मोक्ष जैसे महान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ये उपाय अत्यन्त आवश्यक थे भी । आइए, पहले हम इन अनुशासनों की अर्थात् संवैधानिक उपायों की चर्चा कर लें !

**संवैधानिक उपाय :-**

**2.(i) वर्णव्यवस्था** :- भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय में कहा है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवम् शूद्र वर्णों का विभाग मैंने उनकी जन्मजात प्रवृत्ति अर्थात् गुण एवम् कर्मों के आधार पर किया है (गीता-4/13) । आगे फिर वे अठारहवें अध्याय में कर्मों के आधार पर वर्णों का स्पष्टीकरण करते हैं तथा यह भी बतलाते हैं, कि जन्मजात प्रवृत्ति का निर्माण हर मनुष्य के पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर होता है (गीता-18/41 से 44 तक) । अतएव यह बात साफ है, कि किसी भी व्यक्ति का वर्ण विशेष में जन्म लेना, उसको उस वर्ण का होने का अधिकारी नहीं बना देता, जैसे - रावण का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था, परन्तु वह दुराचारी क्षत्रिय राजा के रूप में जाना गया । परशुराम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा प्रभृत्ति ब्राह्मण थे, परन्तु वे कर्म के आधार पर क्षत्रिय ही जाने गये ।

आज के संदर्भ में यूँ समझें, कि जो व्यक्ति वाणिज्य अर्थात् व्यापार करता है, वह व्यापारी है, जो अध्ययन, अध्यापन, शोध आदि का कार्य करता है, उसे ब्राह्मण तथा जो पुलिस अथवा फौज में रहकर देश की सीमाओं तथा समाज में शान्ति स्थापना में संलग्न हैं, उन्हें क्षत्रिय, शेष को श्रमिक वर्ग में समझना होगा । 'शर्मा बूट हाउस' वाला तो व्यापारी ही कहा जाना चाहिए, वह ब्राह्मण कैसा ? 'मल्होत्रा ट्रेडिंग कम्पनी' को भी व्यापारी कहा जायगा, न कि खत्री (क्षत्रिय) । जौहरी हो अथवा पनवाड़ी, भले ही वे बड़े व्यापारी हों अथवा छोटे परन्तु प्रवृत्ति तो व्यापारी की ही है ।

**2.(ii) आश्रम व्यवस्था :- बानप्रस्थी बनना** :- समाज के हर व्यक्ति को ग्रहस्थाश्रम का कार्य पूरा करके पचास वर्ष के उपरान्त बानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना आवश्यक था । इसका उद्देश्य था, कि मृत्यु के समय जब सब नाते रिश्तेदार एवम् धन सम्पत्ति सभी कुछ एक झटके से सहसा छूट जाने वाली हैं, तो क्यों न यह शरीर, मन, बुद्धि एवम् धन को समाज सेवा में अर्पण कर दिया जाय और फिर पचहत्तर वर्ष के उपरान्त सन्यास लेकर मोक्ष की कामना से बन की ओर प्रस्थान कर दिया जाय । यह एक और महान आदर्श स्थिति है, जिसके पालन करने से व्यक्ति एवम् समाज दोनों को परस्पर महान लाभ होना स्वाभाविक है ।

**2.(iii) समाज एक विराट पुरुष** :- शास्त्रों में समाज को विराट का शरीर कहा गया है और चारों वर्णों की तुलना विराट के शरीर के चार भागों से की गयी है :- **1.** गर्दन से ऊपर के भाग को ब्राह्मण **2.** भुजाओं को क्षत्रिय **3.** पेट को वैश्य तथा **4.** कमर से नीचे के भाग को श्रमिक वर्ग । उदाहरण उत्तम है और वास्तव में इस आदर्श स्थिति को बनाए रखना ही शास्त्रों का उद्देश्य है । वर्णाश्रम व्यवस्था तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है, जब समाज के हर वर्ग में त्याग प्रवृत्ति एवम् परस्पर ममत्व का भाव हो, न कि घृणा अथवा ऊँच नीच का, जैसा कि किसी भी साधारण मानव के मन में अपने सभी अंगों के प्रति परस्पर होता है । पैर में काँटा चुभते ही मन, बुद्धि, हाथ, पैर सभी अंग उसे पीड़ा से निजात दिलाने के लिए पूरी शक्ति से जुट जाते हैं । ऐसी ही भावना एवम् कृत्य हर मानव का पूरे समाज के हर घटक के प्रति होने का विधान बनाया गया था ।

**2.(iv) दण्ड विधान** :- उपरोक्त अनुशासनों एवम् अपने नित्य एवम् नैमित्तिक कर्मों को पालन न करने वाले व्यक्ति के लिए दण्ड व्यवस्था की गयी थी । मनुस्मृति में कहा गया है, कि जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवम् वैश्य) प्रात:काल की संध्या न करता हो और अथवा सायंकाल की संध्या भी न करता हो, उसे द्विज के सम्पूर्ण कर्म से शूद्रवत् बहिष्कृत करके शूद्र कुल में डाल देना चाहिए । (मनुस्मृति-2/103) इस श्लोक के अर्थ को संध्या वन्दन तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए, बल्कि भगवान कृष्ण द्वारा तीनों प्रकार के द्विजों के गुण एवम् कर्मों को साथ जोड़कर ही समझना होगा । संध्या वन्दन

में स्वाध्याय, अग्निहोत्र, तर्पण, जप एवम् ध्यान आदि सारे कर्मों का समावेश हो जाता है । भाव यह है, कि संध्यावन्दन के साथ-साथ हर द्विज अपने वर्ण के कर्त्तव्यों को पूरी निष्ठा से पालन करे, तभी वह द्विज कहलाए जाने का अधिकारी है, वर्ना उसे उपरोक्त दण्ड मिलना ही चाहिए ।

**2.(v) वर्तमान समाज की मान्यताएं** :- आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था उसकी परिभाषा एवम् दण्ड व्यवस्था का उच्च वर्ण वालों ने पालन नहीं किया, क्योंकि वे धन एवम् विद्या से सम्पन्न थे तथा अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए उन्होंने श्रमिक वर्ग की उपेक्षा की । उन्हें शिक्षा-दीक्षा से दूर रखा । उन्हें गरीब बनाए रखने में ही उन्होंने अपना लाभ देखा । गरीबी के कारण वे उच्च वर्ग द्वारा अस्पृश्य बन गये । परन्तु वही भाई जब धर्म परिवर्तन करके अब्दुल्ला अथवा स्टीफन बन कर आए, तो अपने बराबर बिठाने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ । इस प्रकार हिन्दू भारत आज सभी धर्मावलम्बियों का देश बन गया । निकट भविष्य में शीघ्र ही हिन्दू अर्थात् तथा-कथित उच्च वर्ण के लोग अल्पमत में आ जाएंगे, क्योंकि श्रमिक वर्ग या तो बौद्ध धर्म अपना लेगा या फिर मुस्लिम अथवा ईसाई धर्म, क्योंकि इन धर्मों में बहुत से आकर्षण हैं ।

**2.(vi) विकृत मान्यताओं के परिणाम** :- समाज को विराट मानव की मान्यता एक बड़ी और स्वस्थ सोच है । मान लो, कि एक व्यक्ति का मस्तिष्क स्वस्थ है, परन्तु कमर के नीचे के अंग अधरंग (लकवा) से पीड़ित हैं, तब मस्तिष्क द्वारा दिए गये सही-सही निर्देशों का पालन ठीक से होगा ही नहीं और परिणाम यह होगा, कि उस व्यक्ति की कार्यक्षमता उत्तरोत्तर क्षीण होती जायगी । यही आज हमारे हिन्दू समाज में पिछले एक सहस्त्र वर्ष से हो रहा है ।

ढाई हजार वर्ष पूर्व भी इसी प्रकार से वर्ण व्यवस्था चरमरा गयी थी । गरीबी, अंधविश्वास एवम् छुआछूत का दानव शिखर पर था । परिणामस्वरूप गरीबों, विशेषकर श्रमिक वर्ग ने विद्रोह कर दिया । उन्हें लगा, कि ऐसे ईश्वरवादी धर्म के अनुयायी होने से क्या लाभ, जो हमें हमारी न्यूनतम आवश्यकताएं अर्थात् रोटी, कपड़ा और मकान भी नहीं दे सकता । ऐसे समय में महात्मा बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ । उन्होंने अपने करुणा एवम् प्रेम के संदेश और **"अहिंसा परमो धर्मः"** के मन्त्र द्वारा जनता का दिल जीत लिया और लगभग सारा देश ही बौद्ध बन गया । बाद में बारह सौ वर्ष पूर्व आदि-शंकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने वैदिक धर्म अर्थात् वर्णाश्रम धर्म की पुनः स्थापना की, जो अब फिर टूटने के कगार पर है, क्योंकि डा० अम्बेडकर द्वारा स्थापित 'छुआछूत हटाओ' आन्दोलन एवम् काशीराम तथा मायावती द्वारा आज चलायी जा रही राजनैतिक आँधी धीरे-धीरे तेज होती जा रही हैं तथा सरकार के कानून भी इस पक्ष में हैं, कि भारत में वर्ग-हीन, जाति-हीन तथा धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना हो, आखिर शास्त्रों के आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन न करने का प्रतिफल तो होना ही है । बौद्ध धर्म स्थापना के बाद काफी लम्बे अर्से तक हिन्दुओं और बौद्धों में खूनी संघर्ष चला । दोनों पक्षों ने एक दूसरे के मन्दिरों का विध्वंस किया । अब फिर से चक्र उसी ओर घूमता सा लग रहा है । इस बार का संघर्ष कई धर्मों के बीच होना सम्भव है ।

हिन्दू धर्म को छोड़कर अन्य किसी धर्म में वर्ण व्यवस्था का प्रावधान नहीं है, इसीलिए अस्पृश्यता अथवा ऊँच-नीच का भाव भी नहीं है । वास्तव में वर्ण व्यवस्था, मोक्ष उन्मुख समाज रचना का आधार है तथा शूद्र शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति से था, जो लगभग नहीं के बराबर सात्विक जीवन जीता हो तथा विद्या, ज्ञान एवम् साधना आदि में जिसकी कोई रुचि न हो, अपराधी प्रवृत्ति वाला हो अर्थात् चरित्र भ्रष्ट हो । आज के संदर्भ में, यदि ठीक-ठीक विचार करें, तो पायेंगे कि उच्च वर्ण में भ्रष्ट व्यक्तियों की भरमार है, फिर तो वर्ण व्यवस्था एवम् आश्रम व्यवस्था का कोई अर्थ ही नहीं रह गया । भौतिकवाद अर्थात् भोगवादी संस्कृति के युग में जब पैसा ही सब कुछ है, तब भ्रष्टाचार पर कोई अंकुश लगाना बड़ा कठिन कार्य है । मोक्षवादी संस्कृति का विचार आज फिर से लड़खड़ाने लगा है ।

**3.(i) "यज्ञ कर्म" - प्रकृति से शिक्षा** :- अब हम चर्चा करेंगे, कि भारतीय मनीषियों ने प्रकृति से "यज्ञ कर्म" की शिक्षा किस प्रकार ग्रहण की और फिर इसे समाज में कैसे लागू किया । इस सम्बन्ध में भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं :-

*इमं विवस्वते योगं, प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान्मनवे प्राह, मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। (4/1 गीता)*

अर्थात् निष्काम कर्म (यज्ञ) की शिक्षा सर्वप्रथम मैंने सूर्य को दी थी और फिर सूर्य ने यह शिक्षा मनु अर्थात् मानव को दी और परम्परा से यह शिक्षा राजऋषियों तक पहुँची थी, जो बाद में काल की गति से लुप्त हो गयी ।

ज़रा देखिए ! **सूर्य हमारे सौरमण्डल का जनक है और वह अपने शरीर को तपा कर समय का ईमानदारी से पालन करता हुआ पूरी सृष्टि को ऊर्जा देता है** तथा सभी प्राणियों को भोजन, गर्मी, कार्य करने की शक्ति और क्या कुछ नहीं देता । मान लीजिए, सूर्य एक दिन का आकस्मिक अवकाश ले ले, तो क्या हो ? इसी प्रकार पवन, जल, अग्नि ये सभी निरन्तर हमारी निष्काम सेवा में लगे रहते हैं । ये सभी जो सेवा करते हैं, उसके बदले में वे कुछ नहीं लेते, इसीलिए इन्हें देवता की संज्ञा से पुकारा जाता है । इन्हीं देवताओं के कारण हमारा जीवन सुखपूर्वक चलता रहता है ।

**3.(ii) प्रकृति से प्रेरणा** :- **'यज्ञ' क्रिया** - श्री रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी यह समझाने का प्रयास करते हैं, कि प्रकृति में सर्वत्र निरन्तर यज्ञ क्रिया चलती रहती है और उस 'यज्ञ' क्रिया अर्थात् त्याग वृत्ति के कारण सृष्टि का कार्य **'आदान-प्रदान'** नियम के अन्तर्गत सुचारु रूप से चलता रहता है तथा कभी भी किसी को कमी नहीं आने पाती, **क्योंकि हर त्याग की भरपायी किए जाने का प्रकृति ने भरपूर पक्का प्रबन्ध कर रखा है । कहा है :-**

*संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ।। (उ.कां. दोहा 124-125)*

**(अ) सरिता (नदी)** :- नदी सदैव प्रवाहमान रहती है और इसके सुस्वाद जल को पक्षी, पशु, मानव उन्मुक्त रूप से प्रयोग करते हैं। परन्तु इनका जल कभी कम नहीं होता । प्रकृति का नियम तो देखिए, कि सूर्य की गर्मी से समुद्र से सदैव भाप बनकर बादल वर्षा द्वारा नदी को लबालब भर देते हैं तथा वर्षा ऋतु में अनेक स्थानों पर बाढ़ भी आ जाती है और पहाड़ पर जो बादल बर्फ के ग्लेसियर का निर्माण कर देते हैं, उसके कारण नदी में पूरे वर्ष जल की आपूर्ति होती रहती है, इस प्रकार जल की कभी भी कमी नहीं हो पाती । इस प्रकार ईश्वर वर्षा चक्र द्वारा नदी की उपकार वृत्ति को सतत् बनाए रखता है ।

**(ब) गिरि (पर्वत)** :- पर्वतों पर वनस्पति, वृक्ष उगे हाने से वे बादलों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा दूर-दूर तक पहाड़ों से लेकर मैदानी इलाकों तक वर्षा होती है । पर्वतों पर बर्फ के कारण भी वर्षा होती है । पर्वतों पर अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न होती हैं, जो मानव के अनेक रोगों को दूर करती है । पर्वतों पर स्थित ग्लेसियरों से गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्र, सतलुज, व्यास, रावी, चिनाव, झेलम जैसी बड़ी-बड़ी नदियाँ व जल प्रपात

बह कर मैदानी भूभाग पर आते हैं, उससे पूरे मैदानी भाग पर रहने वाले लोग अनेक प्रकार से लाभान्वित होते हैं । इन पर्वतों द्वारा परोपकार के कार्यों को सतत् ऊर्जा मिलती रहे, इसके लिए प्रकृति पूरा पक्का प्रबन्ध करके रखती है, ताकि किसी प्रकार भी इनका यह स्वरूप सदैव ऐसा ही बना रहे ।

**(स) धरनी (पृथ्वी)** :- पृथ्वी सतत् अपनी धुरी पर और अपने अयन (परिक्रमा पथ) पर घूम-घूम कर दिन-रात का तथा ऋतुओं का निर्माण करती है । सूर्य और चन्द्र से पृथ्वी को स्वपूर्णन के कारण सतत् ऊर्जा एवम् शीतलता की प्राप्ति होती है । भोजन उत्पन्न होता है । फल-फूल, वनस्पति की धात्री पृथ्वी-माता, क्षमा की साक्षात् देवी है । यह माता वनों, पर्वतों, सम्पूर्ण प्राणी जगत को अपने वक्ष स्थल पर धारण करके जीवन्त बनाए रखती है । गुरुत्वाकर्षण द्वारा यह हमें कहीं गिरने नहीं देती और हम इसकी विशाल सतह पर चल-फिर सकते हैं और दौड़ भी सकते हैं । ज्वालामुखी के फटने एवम् अन्य कारणों से पृथ्वी की गति में बाधा आने पर हमें इस बात का एहसास होता है, कि हम किसी गतिशील पिण्ड पर अवस्थित हैं, वर्ना यह निरन्तर निर्बाध गति से घूमते हुए भी हमें कभी यह भान तक नहीं होने देती, कि हम स्वयम् भी 1000 मील प्रति घंटे की गति से घूम भी रहे हैं । चन्द्र ग्रहण एवम् सूर्य ग्रहणों का दृश्य एवम् अनेक आकाशीय पिण्डों का अध्ययन भी पृथ्वी के कोमल एवम् शान्ति पूर्ण सहयोग के कारण ही सम्भव हो पाता है । पृथ्वी की उपकार वृत्ति को बनाए रखने हेतु, सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति इसे अपनी कक्षा में तथा अपने से निश्चित दूरी पर स्थित रखती है तथा सूर्य इसे अपनी ऊर्जा द्वारा उन सभी उपकार के कार्यों में पूरी-पूरी सहायता करता है । इस प्रकार **'आदान-प्रदान'** चक्र निरन्तर बना रहता है और मानव इससे लाभान्वित होता रहता है ।

**(द) विटप (वृक्ष)** :- वृक्ष हमें छाया, फल एवम् फूल, भोजन, शाक-सब्जी, अनाज सभी कुछ आहार योग्य पदार्थ उपलब्ध कराते हैं । हम वृक्षों को बहुत बार अनावश्यक रूप से काट देते हैं, खासकर जीवित वृक्ष को । यह बड़ा ही क्रूर कार्य है । हमारे मुख से निकली कार्बन डाय-आक्साइड को साफ करके वृक्ष हमें आक्सीजन देते हैं तथा बचे कार्बन से कार्बोहाइड्रेट द्वारा अपना भोजन, फल-फूल, पत्तियों आदि का निर्माण कर लेते हैं । यह कार्य मानवी **'आदान-प्रदान'** का श्रेष्ठतम उदाहरण है । मानव एवम् पशुओं द्वारा त्यागा हुआ विष्टा, पतझड़ द्वारा गिरी सड़ी-गली पत्तियाँ, इन वृक्षों के लिए खाद (भोजन) का कार्य करती हैं । इनकी सूखी लकड़ी, सूखे तने जलाने के तथा फर्नीचर के काम आते हैं । नदियों के तथा पृथ्वी सतह के नीचे के जल से इनकी प्यास की पूर्ति होती है । ईश्वर ने वृक्षों की उपकार भावना को सतत् बनाए रखने का 'आदान-प्रदान' चक्र के नियम को बनाए रखकर ठोस एवम् पक्का प्रबन्ध कर दिया है ।

**(य) संत** :- संतों के गुणों का बखान शास्त्रों में अनेक प्रकार से किया गया है । संत दुःख सहकर भी दूसरों का भला करते हैं । संतों का हृदय नवनीत (मक्खन) के समान कोमल होता है । मक्खन तो अपने ताप से पिघलता है परन्तु संत तो दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं । वे किसी की भी निन्दा नहीं करते । अपना तन, मन, धन त्याग कर भी समाज एवम् राष्ट्र की सेवा में तत्पर रहते हैं । संतों का जीवन सात्विक होता है । वे पृथ्वी पर ईश्वरीय कार्य करने हेतु ही जीवन धारण करते हैं । वे सदैव ईश्वर भक्ति तथा दूसरों के उपकार में लगे रहते हैं । वे दूसरों का दुःख नहीं देख सकते । जब-जब जनहित करते हुए संत दुःख पाते हैं, तब-तब ईश्वर परोक्ष अथवा साक्षात् प्रगट होकर उनकी रक्षा करता है । संतों के महान त्याग और उच्च चरित्र के कारण समाज में बुराई कम होती है तथा सात्विकता, सौहार्द, ईश्वरीय प्रेम आदि सद्गुणों का विकास होता है । वे नए युग का निर्माण करते हैं । समाज को ईश्वरीय नियमों से अवगत करा के जन-जन में सुख एवम् शान्ति का वातावरण तैयार करते हैं । संत कबीर, ज्ञानेश्वर, आदि-शंकराचार्य, रामकृष्ण-परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि रमण आदि कुछेक नाम संतों की श्रृंखला में कहे जा सकते हैं, जिनके वचन प्रमाण माने जाते हैं और उनके उपदेश जन-जन को सदियों तक प्रकाश स्तम्भ के रूप में आलोकित करते रहेंगे ।

उपरोक्त पाँच उदाहरणों से यह स्पष्ट है, कि **प्रकृति पूर्ण रूप से सारे कार्य, प्राणी मात्र के लाभ के लिए ही करती है और इस उपकार परम्परा को दृढ़ता से बनाए रखने हेतु उसकी पूरी-पूरी भरपायी का प्रबन्ध भी रखती है** । यह चक्र का सिद्धान्त ठीक से समझने की आवश्यकता है, जैसे - पर्वत एवम् सरिता की भरपायी वर्षा द्वारा, धरती की उपकार की भरपायी सूर्य द्वारा, वृक्षों द्वारा की गयी उपकार की भरपायी नदियों, वर्षा, पृथ्वी एवम् सूर्य द्वारा पूरी होती रहती है तथा संतों के द्वारा किया गया उपकार की भरपायी ईश्वरीय शक्ति द्वारा स्वतः होती रहती है तथा त्याग की चरम परिणित होने पर उन्हें ईश्वर साक्षात्कार हो जाता है, जो जीवन का यथार्थ लक्ष्य है ।

मानव में स्वार्थ प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है अतएव वह प्रकृति से तथा समाज के अन्य सहयोगियों से अपना कार्य तो पूरा करवा लेता है, परन्तु बदले में उनके लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं होता । इसी स्वार्थपरता एवम् अदूर दर्शिता के कारण समाज में असंतोष, चोरी, डाके, हत्या, लूट-पाट, हड़तालें, दुर्घटनाऐं, रोग, महामारियाँ, भूचाल, राग-द्वेष, वैमनस्य, कलह तथा देशों के बीच खूनी संघर्ष आदि अनेक बीभत्स कृत्य होते हैं । इसीलिए भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, कि :- *दृष्टान्भोगान्हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञ भाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।। (3/12 गीता)*

अर्थात् "**यज्ञ**" द्वारा देवता लोग वृद्धि को प्राप्त होते हैं और तब वे हम सबको हमारे इच्छित भोग, बिना माँगे ही दे देते हैं । लेकिन जो पुरुष इन देवताओं को अर्पण किए बिना स्वयम् भोगों को भोगता है वह **निश्चय ही चोर है** । यहाँ यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए, कि **'यज्ञ'** का अर्थ **अग्निहोत्र कतई नहीं है** । अग्निहोत्र तो **'यज्ञ'** का **'प्रतीक'** मात्र है । जिस प्रकार हिन्दू धर्म में कुछ लोगों ने मूर्तियों को, जो परमात्मा के प्रतीक (चिह्न) मात्र हैं, साक्षात भगवान मान लिया है, इसी प्रकार से यज्ञ के उपासकों ने अग्निहोत्र को भ्रम एवम् अज्ञानतावश **'यज्ञ'** मान लिया है । **वास्तव में 'यज्ञ' का अर्थ तीनों प्रकार की सेवा से है** । इसी सेवा से समाज में तथा प्रकृति में समरसता उत्पन्न होती है और सभी देवगण वृद्धि को प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रसन्न रहते है और मानव को सतत् सुख एवम् शान्ति प्रदान करते रहते हैं । यहाँ यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए, कि प्रकृति में समरसता की उत्पत्ति समाज में त्याग वृत्ति द्वारा प्रेम एवम् सौहार्द आदि के उत्पन्न होने से उत्पन्न होती है । साथ में हम प्रकृति को प्रदूषित भी न करें । वृक्षों को आवश्यकता की सीमा तक ही काटें, नदियों को तथा समुद्र को प्रदूषित न करें, वायु को प्रदूषित न करें, इत्यादि । तभी देवगण पूर्ण प्रसन्न रहेंगे और हमें इच्छित भोगों को देंगे । गीता का ठीक-ठीक भाव यही है । राम राज्य का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने समझाया है, कि किस प्रकार त्याग द्वारा राम के राज्य में सर्वत्र समरसता, सौहार्द, प्रेम एवम् शान्ति और आनन्द छाया हुआ था *(उ.कां. दो.-19 से 23 तक)* । (कृपया लेखक द्वारा लिखित "यज्ञ अर्थात् निष्काम कर्म" लेख को देखें )

**3.(iii) यज्ञ कर्म अर्थात् सकारात्मक उपाय** :- प्रकृति से "यज्ञ कर्म" की शिक्षा लेने के पश्चात् समाज एवम् राष्ट्र को एकजुट बनाए रखने हेतु यह आवश्यक समझा गया, कि समाज के हर घटक को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं "रोटी, कपड़ा और मकान" की बराबर आपूर्ति की जाती रहे ।

इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अनेक योजनाओं पर मन्थन हुआ, परन्तु अन्त में इस कार्य को सेवा एवम् त्याग भावना द्वारा नियोजित करने को वरीयता दी गयी । तन, मन एवम् धन के 'दान' अर्थात् 'यज्ञ' का प्रावधान किया गया तथा इस कार्य की सीमा भी तय की गयी । इस कार्य को पूरा करने हेतु कौन-कौन उत्तरदायी होंगे, इस बात के भी स्पष्ट निर्देश दिए गये । आइए ! अब शास्त्रों के निर्देशों पर चर्चा करें ।

**3.(iv) दान अर्थात् यज्ञ** :- हिन्दू धर्म ग्रंथों में दान की महिमा बहुत प्रकार से वर्णन की गयी है । गोस्वामी तुलसीदास जी अपने रामचरित मानस में बतलाते हैं, कि :-

*प्रगट चारि पद धरम के, कलि महुँ एक प्रधान । येन केन विधि दीन्हें, दान करइ कल्यान ।।*

अर्थात् धर्म के चार स्तम्भ हैं, उनमें से दान ही ऐसा स्तम्भ है जो कलियुग में अनुसरण करने से कल्याण करता है।

आगे कहते हैं - *सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुण्य रत मति सोइ पाकी ।।*

अर्थात् धन की तीन प्रकार से गति होती है । प्रथम - दान, द्वितीय - स्वभोग और अन्त में जोड़-जोड़ कर रखा हुआ धन, एक न एक दिन चोर, राजा व डॉक्टर ले लेते हैं अथवा स्वयम् ही प्राकृतिक कारणों से नष्ट हो जाता है । अतएव उसी व्यक्ति की बुद्धि परिपक्व है, जो अपना धन पुण्य कार्यों में व्यय करता है । साधारणतया हम 'दान' का अर्थ 'धन दान' ही समझते हैं, परन्तु शास्त्रों में दान के कई प्रकार बतलाए गये हैं, जैसे - भूमिदान, अन्नदान, स्वर्णदान, विद्यादान, श्रमदान आदि । मुख्यतया इनको तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है ।

1. **श्रमदान अथवा तन से सेवा** :- जो व्यक्ति शरीर से बलवान तथा सुदृढ़ हैं, वे अपने माता-पिता के अतिरिक्त समाज के अन्य वृद्धों, असहायों, रोगियों आदि की सेवा तन से करने के लिए विशेषरूप से उपयुक्त है ।
2. **ज्ञान-दान अथवा मन-बुद्धि से सेवा** :- जिन व्यक्तियों का आत्मविश्वास तथा बुद्धि विशेष रूप से विकसित है, ऐसे विद्वान, बुद्धिजीवी वर्ग के लोग, जैसे - सम्पादक, पत्रकार, लेखक, कवि, गुरुजन, पण्डित, संत, महात्मा, उपदेशक आदि जन-जागरण, धर्म प्रचार और सद्विचारों के प्रचार-प्रसार का कार्य ठीक से कर सकते हैं । इनके द्वारा किया गया कार्य ज्ञान-यज्ञ के अन्तर्गत आता है ।
3. **अन्नदान अथवा अर्थ (धन) से सेवा** :- जिन महानुभावों पर लक्ष्मी की असीम कृपा हो, ऐसे धनाढ्य व्यक्ति, व्यापारी वर्ग, राजा, महाजन, सेठ आदि समाज के कमजोर वर्ग को रोटी, कपड़ा, मकान, रोजगार आदि दिलाने में धन से सहायता विशेष रूप से करने के योग्य होते हैं ।

यथार्थ में दान करना त्याग वृत्ति से होता है और त्याग वृत्ति अर्थात् **'यज्ञ भावना' निष्काम सेवा** को कहते हैं । अतएव **'दान'** करना **'यज्ञ'** का ही रूप है । मानव इस यज्ञ कार्य को उपरोक्त तीन प्रकार से कर सकता है ।

जिस प्रकार पृथ्वी अपने कार्य के साथ-साथ नदी का कार्य नहीं कर सकती तथा नदी पृथ्वी का, यद्यपि दोनों ही अपने-अपने ढंग से परोपकार के कार्य में निरन्तर लगे रहते हैं । उसी प्रकार साधारणतया बुद्धिजीवी वर्ग श्रम का कार्य अथवा धन से समाज की सहायता नहीं कर सकता । कदाचित् ही कभी ऐसा संयोग होता हो, जब एक ही व्यक्ति तीनों प्रकार की सेवाएं कर सकने की पूर्ण क्षमता रखता हो, यह एक परम सौभाग्य है, पर समाज इस प्रकार से नहीं चलता । जो व्यक्ति जिस योग्य हो, वह उसी को पूरे मन से करे । बस उसी से व्यक्ति तथा समाज सभी का पूर्ण हित होगा, जैसे - राजा हरिश्चन्द्र को 'सत्य' और 'दान' की चरम सीमा तक जाने से ईश्वर का साक्षात्कार हुआ, इसी प्रकार दानवीर कर्ण ने संसार में यश पाया और दानियों में श्रेष्ठ कहलाया ।

उपरोक्त तीनों प्रकार की त्याग वृत्ति मानव को जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् **'मोक्ष'** तक पहुँचा सकती है, बशर्ते कि वह यजमान मन से अहम् भावना का सम्पूर्ण रूप से त्याग कर दे । अग्निहोत्र करते समय जब "इदम् न मम्" का उद्घोष किया जाता है, तब यह अग्निहोत्र **'यज्ञ'** अर्थात् **'निष्काम सेवा'** का प्रतीक बन जाता है । इसीलिए किसी भी धार्मिक कृत्य के उपरान्त अग्निहोत्र करने का विधान है । इस उद्घोष द्वारा यह शिक्षा दी जाती है, कि जो भी सेवा की गयी है उसमें अहम् वृत्ति का त्याग करो ।

पुराणों में कथाऐं मिलती हैं, जैसे - माता-पिता की सेवा करके श्रवण कुमार, गुरु की सेवा करके आरुणि ने जीवन के उच्चतम शिखर को प्राप्त किया था । बालमीक, वेदव्यास, तुलसीदास जैसे विद्वानों ने अपने विद्वतापूर्ण काव्यों द्वारा समाज की जो अभूतपूर्व सेवा की है, वह युगों-युगों तक भुलायी नहीं जा सकेगी । दान करने में राजा हरिश्चन्द्र एवम् राजा मोरध्वज के नाम अग्रणी रहेंगे । देह दान का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया शिव दधीचि ने । आज के युग में नेत्र दान एवम् मानव शरीर के अन्य अंगों का दान एक उत्तम कार्य है ।

**4. समाज सेवा का स्वरूप** :- आज के समाज के संदर्भ में समाज को निम्नलिखित सेवाओं की परम आवश्यकता है । इन सुझावों पर विचार करें और इन्हें अपने क्षेत्रीय साँचे में ढालकर कार्यान्वित भी करें ।

**1.** अनाथ आश्रम एवम् अंध विद्यालय के बच्चों को फल मिठाई, दूध, ब्रैड अथवा कुछ उपहार बाँटे । **2.** झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले बच्चों को भोजन करवाएं तथा फल मिठाई आदि बाँटे । कापियाँ पैन्सिलें ड्राइंग बाक्स तथा अन्य स्कूली सामग्री से उनकी सहायता करें । बनवासियों के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, कपड़ों आदि का प्रबन्ध करें । **3.** अनाथ आश्रम एवम् अंध विद्यालयों के मेधावी बच्चों में से एक-दो अथवा कुछ को कुछेक सम्पन्न व्यक्ति उनको अपने पैरों पर खड़े होने तक आर्थिक सहायता देते रहने का व्रत लें । **4.** झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले नौजवानों के लिए रोजगार के साधन उपलब्ध कराने हेतु, बिजली की कारीगरी, मशीनरी की मरम्मत की शिक्षा अथवा अन्य छोटी-छोटी शिक्षण संस्थाएं आरम्भ करवाएं अथवा पहले इस प्रकार से चल रही संस्थाओं के संचालन में तन, मन एवम् धन से सहायता करें । **5.** विधवा एवम् गरीब व बेरोजगार स्त्रियों के लिए सिलाई मशीनें मुफ्त बटवाएं अथवा कोई हस्तकला कढ़ाई, बुनाई, सिलाई, रंगाई आदि की कार्यशाला का आयोजन कराएं । **6.** गरीब कन्याओं हेतु समुचित वर तलाश करके उनका सामूहिक विवाह करवाएं । **7.** प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना करवाएं तथा अशिक्षितों को साक्षर बनाने का प्रयास करें । **8.** बाल मजदूरों तथा बँधुआ मजदूरों को मुक्त कराके उनकी शिक्षा तथा रोजगार का प्रबन्ध करवाएं । **9.** समाजसेवी संस्थाएं "ग्राम गोद लेने कार्यक्रम" के अन्तर्गत किसी निकट के ग्राम को गोद लेकर उसके सर्वांगीण विकास में सहायता करें । **10.** हस्पतालों में रोगियों के पास जाकर उनका हालचाल पूछें । उन्हें शीघ्र स्वस्थ होने हेतु शुभ कामनाएं दें । कुछ पुष्प-गुच्छ भी भेंट स्वरूप दें । **11.** हस्पतालों में विशेषकर जनरल वार्डों में फल मिठाई बँटवाएं तथा किसी गरीब रोगी का जिसका कोई अभिभावक न हो, यदि उसको आर्थिक सहायता आवश्यक हो तो उसे करें, खास कर भारत के दूर-दराज़ से आए रोगी

की बहुधा मनोबल बढ़ाने की तथा धन से सहायता करने की आवश्यकता पड़ जाती है, वह करें । **12.** वृद्धाश्रमों में जाएं तथा वृद्धों से उनकी समस्याएं सुनें और उन्हें हौसला दें । उन्हें उपहार दें तथा कभी-कभी उनके हाल-चाल पूछने अथवा उनकी इच्छा की वस्तुओं को पहुँचाने का प्रबन्ध भी करें । किसी बेसहारा वृद्ध को समय-समय पर सहायता करते रहने का व्रत भी लें । **13.** नयी पीढ़ी को इस प्रकार की शिक्षा एवम् संस्कार देने का प्रयास करें, ताकि उनके मनों में हमारी प्राचीन संस्कृति की भावना 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' एवम् 'आचार्य देवो भव' का भाव दृढ़ हो सके और वृद्धाश्रमों के बनाने की आवश्यकता ही न रहे । **14.** किसी मुकदमे में फँसे गरीब की कानूनी सहायता करें । **15.** राष्ट्रीय समूह गान प्रतियोगिता द्वारा बच्चों में राष्ट्रीय भावना भरने तथा प्रतियोगिता की स्वस्थ भावना से उन्हें आगे बढ़ने का संस्कार प्रदान करें । **16.** डाक्टरी चैक-अप एवम् 'आँखें जाँच शिविर' द्वारा जनता के कमज़ोर वर्ग में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता लाएं एवम् मेडिकल सहायता करके उनकी चिकित्सीय आवश्यकता का निदान करें । उन्हें समुचित हस्पतालों में इलाज हेतु भिजवाने में सहायता भी करें । रक्तदान शिविर भी आयोजित करें । **17.** जिन व्यक्तियों के शरीर का कोई अंग कट गया हो, उसे समाजसेवी संस्थाओं के माध्यम से 'कृत्रिम अंग प्रदान' करवाएं । **18.** विधवाओं की अनुमति लेकर उनका पुनर्विवाह करवाएं ।

उपरोक्त तथा अनेकानेक और भी देश सेवा एवम् समाज सेवा के स्थानीय तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप सेवा कार्य हो सकते हैं, उन्हें समाजसेवी संस्थाएं मिलकर पूरे मन से तथा नियमित रूप से करें । नर सेवा को नारायण सेवा समझकर करें । यथार्थ में यह निष्काम सेवा ही **'यज्ञ'** है, और गीता का सार भी । यहाँ पर यह कतई आवश्यक नहीं है, कि जिसकी सहायता की जाय, वह श्रमिक वर्ग का ही हो, बल्कि यह बात ठीक से समझने की है, कि कोई भी वृद्ध, असहाय, रोगी, गरीब किसी वर्ण का क्यों न हो, पूरे समाज का कर्त्तव्य है, कि उसकी सहायता करे । यह पुण्य कार्य कृपावश नहीं, बल्कि कर्त्तव्य समझ कर किया जाय । इसी से हम सबकी **आत्मोन्नति** भी होगी और जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् **'मोक्ष'** की प्राप्ति भी ।

**5. चक्र का सिद्धान्त** :- भगवान श्री कृष्ण **'यज्ञ'** का स्वरूप अर्थात् समाज सेवा को समझाते हुए कहते हैं :-

*यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।। (3/13 गीता)*

अर्थात् मानव को चाहिए, कि वह समाज की तीनों प्रकार से सेवा अर्थात् **'यज्ञ'** करे । इसके पश्चात् जो कुछ शेष बचे, उसका भोग करे यही श्रेष्ठ है, क्योंकि **यज्ञ** से बचे हुए अन्न (धन-धान्य आदि) को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूट जाते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर-पोषण के लिए ही पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं ।

फिर भगवान कहते हैं :- *एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।। (3/16 गीता)*

अर्थात् जो पुरुष यह समझ कर भी, कि सृष्टि का चक्र इस प्रकार घूमता है, कि ***हर त्याग की भरपायी निश्चित रूप से हो ही जाती है, तब भी वह यज्ञमय जीवन यापन नहीं करता, ऐसा पुरुष पापी है*** और वह अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए भोग भोगता हुआ अपना मूल्यवान मानव जीवन व्यर्थ ही गँवा देता है ।

जब-जब समाज ने उपरोक्त सिद्धान्तों के पालन करने में प्रमाद किया है, तब-तब समाज के श्रमिक वर्ग में गरीबी के कारण अंधविश्वास एवम् छुआछूत जैसी कुरीतियों का जन्म हुआ और प्रतिक्रिया स्वरूप विद्रोह हुआ तथा अनीश्वरवादी धर्मों का प्रादुर्भाव भी हुआ अथवा विधर्मियों द्वारा विशाल हिन्दू धर्म के अनुयाइयों का लालच अथवा भय के कारण धर्मान्तरण किया गया । इससे विशेषकर भारत माता को ऐसी गहरी चोट खानी पड़ी, कि राष्ट्र की एक-जुटता टूटी तथा धार्मिक, सांस्कृतिक एवम् राजनैतिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न होकर हम परतन्त्रता के शिकार हुए ।

अन्त में विशाल दृष्टि एवम् दूरदर्शिता इसी में है, कि हम भगवान कृष्ण द्वारा बतलाए गये **'चक्र के सिद्धान्त'** को समझकर बर्ताव करें तथा अपने कमजोर वर्ग के भाइयों की रोटी, कपड़ा एवम् मकान की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपना धर्म समझें तथा ईमानदारी से हर सम्भव कोशिश भी करें । हम यह कह कर अपना पल्लू नहीं झाड़ सकते, कि हम तो टैक्स देते हैं इसलिए यह काम तो सरकार का है । ठीक है, सभी को रोजगार पाने का मूलभूत अधिकार है, इसके अन्तर्गत सरकार कमजोर वर्ग को रोजगार मुहैया कराने में प्राथमिकता दे, परन्तु सरकार सब कुछ नहीं कर सकती । हम सबको मिलकर यह पूरा करना है । इसी में हम सबकी सुरक्षा एवम् समाज का तथा राष्ट्र का कल्याण निहित है । इसी से सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय समृद्धि, आत्मोन्नति एवम् सर्वत्र शान्ति की स्थापना हो सकेगी ।

**6. अंश दान एवम् सुसम्मति** :- जिस प्रकार नदी का जल पशु-पक्षी, मानव तथा वृक्षों एवम् खेतों द्वारा मुश्किल से कुल मिला कर 10% ही व्यय हो पाता है, परन्तु बदले में नदी की लाखों गुना आपूर्ति हो जाती है । इसी प्रकार, यदि हम समाज को अपनी आय का 10% धन, श्रम तथा मन-बुद्धि अर्पण करते रहें, तो समाज में न कोई अशिक्षित रहेगा, न बेरोजगार, न ही गरीब और न ही पीड़ित अथवा रोगी । "जैसा बोओगे, वैसा पाओगे" यह जगत प्रसिद्ध कहावत है, इसलिए अधिक से अधिक बोना चाहिए, यही उत्तम सीख है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

*पानी बाढ़ो नाँव में, घर में बाढ़े दाम । दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम ।।*

*और रहीम कवि कहते हैं :-*

*कह रहीम पंछिन के पिये, घटै न सरिता नीर ।*
*दान किए धन न घटै, हौं सहाय रघुवीर ।।*

अर्थात् पक्षियों (पक्षी शब्द, पशु, मानव, पेड़-पौधों सभी के लिए प्रयुक्त हुआ है) के पीने से नदी का जल कभी कम नहीं होता, क्योंकि इसकी आपूर्ति ईश्वर स्वयम् करता है । अन्त में -

*गोधन, गजधन, बाजधन और रतन धन खान । जब आवे संतोषधन, सब धन धूरि समान ।।*

अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाइए । रोगों से, तनाव से तथा चोर-लुटेरों से निजात पाइए । तब पींजरे बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी ।

*ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !*

*डा० तन्मय*
*गायत्री धाम, बी-340,*
*लोक विहार, पीतम पुरा,*
*दिल्ली-34 फोन: 7184145*

*नोट: आदरणीय पाठकों से निवेदन है कि वे अपने विचारों से लेखक को अवगत कराएं, जिसके लिए लेखक उनका अग्रिम धन्यवाद करता है।*